ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 250-265
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Dr. Mahesh Kumar

Department of Political Science, Babasaheb Bhimrao Ambedkar Bihar University, Muzaffarpur.

Corresponding Author :

Dr. Mahesh Kumar

Department of Political Science, Babasaheb Bhimrao Ambedkar Bihar University, Muzaffarpur.

भारत एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायिक सक्रियता की अवधारणा का एक तुलनात्मक अध्ययन

सारांश : यह शोध पत्र भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका, विश्व के दो प्रमुख लोकतंत्रों में, न्यायिक सक्रियता की अवधारणा का एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन के लिए गुणात्मक (qualitative) और तुलनात्मक-विश्लेषणात्मक (comparative-analytical) शोध विधि का उपयोग किया गया है। शोध के अंतर्गत दोनों देशों के संवैधानिक प्रावधानों, ऐतिहासिक न्यायिक निर्णयों, और प्रतिष्ठित अकादमिक लेखों का विश्लेषण किया जाएगा ताकि न्यायिक हस्तक्षेप के पैटर्न और तर्कों को समझा जा सके।

पत्र का मुख्य तर्क यह है कि यद्यपि दोनों देशों की न्यायपालिकाएँ नागरिक अधिकारों की रक्षा में सक्रिय हैं, उनकी सक्रियता की प्रकृति, साधनों और सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव में गहरा अंतर है। जहाँ अमेरिकी न्यायिक सक्रियता मुख्य रूप से 'न्यायिक समीक्षा' पर आधारित और व्यक्तिगत अधिकारों तक सीमित है, वहीं भारतीय न्यायिक सक्रियता 'जनहित याचिका' (PIL) जैसे साधनों के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक न्याय और शासन के क्षेत्र में भी हस्तक्षेप करती है।

निष्कर्षतः, यह शोध दर्शाता है कि भारतीय न्यायिक सक्रियता अधिक व्यापक और हस्तक्षेपकारी है, जबकि अमेरिकी मॉडल अधिक संयमित और व्याख्यात्मक है, जो दोनों लोकतंत्रों में शक्ति के पृथक्करण (separation of powers) के सिद्धांत के लिए भिन्न चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द - न्यायिक सक्रियता, विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं भारत।

1: परिचय

1.1 पृष्ठभूमि (Background) : किसी भी जीवंत लोकतंत्र की आधारशिला शक्ति के पृथक्करण (Separation of Powers) के सिद्धांत पर टिकी होती है, जिसे मोंटेस्क्यू जैसे राजनीतिक दार्शनिकों ने सरकार की निरंकुशता को रोकने और नागरिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के लिए एक अनिवार्य तंत्र के रूप में प्रतिपादित किया था (Montesquieu, 1748)। इस सिद्धांत के अनुसार, शासन की तीन शाखाएँ - विधायिका (कानून बनाना), कार्यपालिका (कानून लागू करना), और न्यायपालिका (कानून की व्याख्या करना) - अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में स्वायत्त रूप से कार्य करती हैं, साथ ही एक-दूसरे पर नियंत्रण और संतुलन (Checks and Balances) भी बनाए रखती हैं।

हालांकि, सैद्धांतिक रूप से यह विभाजन जितना स्पष्ट प्रतीत होता है, व्यवहार में उतना कठोर नहीं है। विशेष रूप से, न्यायपालिका की भूमिका केवल कानूनों की शाब्दिक व्याख्या तक सीमित नहीं रह गई है। संविधान, जो किसी भी राष्ट्र का सर्वोच्च विधान होता है, एक जीवंत दस्तावेज़ है, और इसकी व्याख्या समय और सामाजिक परिस्थितियों के साथ बदलती रहती है। यहीं पर **न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism)** की अवधारणा उभरती है। यह एक ऐसी स्थिति को संदर्भित करती है जहाँ न्यायपालिका अपनी पारंपरिक न्यायिक समीक्षा की भूमिका से आगे बढ़कर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सुधार लाने के लिए निर्देश देती है, खासकर जब विधायिका और कार्यपालिका अपने संवैधानिक दायित्वों को पूरा करने में विफल रहती हैं।

यह शोध पत्र विश्व के दो सबसे प्रभावशाली लोकतंत्रों - **संयुक्त राज्य अमेरिका**, जो दुनिया का सबसे पुराना आधुनिक लोकतंत्र है, और **भारत**, जो दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है - की न्यायिक प्रणालियों में न्यायिक सक्रियता की अभिव्यक्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास करता है। दोनों राष्ट्रों ने एक स्वतंत्र न्यायपालिका और लिखित संविधान के मूल्यों को साझा किया है, फिर भी उनकी ऐतिहासिक यात्रा, संवैधानिक संरचना और सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों ने उनकी न्यायपालिकाओं को सक्रियता की एक अनूठी राह पर अग्रसर किया है। अमेरिकी सक्रियता जहाँ व्यक्तिगत अधिकारों और नागरिक स्वतंत्रता के प्रश्नों से गहराई से जुड़ी हुई है, वहीं भारतीय सक्रियता का विस्तार सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और शासन के व्यापक मुद्दों तक हुआ है।

1.2 शोध समस्या (Research Problem) : न्यायिक सक्रियता अपने आप में एक विवादास्पद अवधारणा है। इसके समर्थक इसे सामाजिक न्याय का एक अनिवार्य उपकरण और कमजोरों की आवाज़ मानते हैं, जबकि आलोचक इसे "न्यायाधीशों द्वारा कानून बनाने" (legislating from the bench) और शक्ति के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन या "न्यायिक अतिक्रमण" (Judicial Overreach) कहते हैं (Mehta, 2007)। समस्या तब और जटिल हो जाती है जब हम विभिन्न लोकतांत्रिक प्रणालियों में इसके प्रकटीकरण की तुलना करते हैं।

इस शोध की मूल समस्या यह समझना है कि भारत और अमेरिका में न्यायिक सक्रियता किन संवैधानिक आधारों पर विकसित हुई है, इसके लिए किन साधनों का उपयोग किया गया है, इसका दायरा कितना भिन्न है, और इन भिन्नताओं के उनकी संबंधित लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के लिए क्या निहितार्थ हैं। उदाहरण के लिए, हाल के वर्षों में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट द्वारा **'डॉब्स बनाम जैक्सन महिला स्वास्थ्य संगठन' (2022)** मामले में गर्भपात के संवैधानिक

अधिकार को पलटना, जिसे कुछ लोग न्यायिक संयम के रूप में देखते हैं, तो अन्य इसे एक प्रकार की रूढ़िवादी न्यायिक सक्रियता मानते हैं जो दशकों से स्थापित मिसाल को खारिज करती है (Tribe & Dorf, 2022)। वहीं, भारत में, सर्वोच्च न्यायालय का प्रवासी मजदूरों के अधिकारों से लेकर COVID-19 प्रबंधन तक में हस्तक्षेप करना इसकी सक्रिय भूमिका को दर्शाता है।

अतः, यह शोध निम्नलिखित मुख्य प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करेगा:

1. भारत और अमेरिका में न्यायिक सक्रियता के ऐतिहासिक और संवैधानिक उद्भव के पीछे कौन से कारक थे?
2. दोनों देशों की न्यायपालिकाएँ सक्रियता के लिए किन विशिष्ट न्यायिक उपकरणों (जैसे भारत में जनहित याचिका और अमेरिका में न्यायिक समीक्षा की व्यापक व्याख्या) का उपयोग करती हैं?
3. इन दोनों मॉडलों के तहत न्यायिक सक्रियता का दायरा (Scope) कैसे भिन्न है - क्या यह मुख्य रूप से नागरिक-राजनीतिक अधिकारों पर केंद्रित है या सामाजिक-आर्थिक अधिकारों तक विस्तृत है?
4. न्यायिक सक्रियता के ये भिन्न मॉडल लोकतंत्र, जवाबदेही और शक्ति संतुलन को कैसे प्रभावित करते हैं?

1.3 शोध का उद्देश्य (Objectives of the Research)

इस शोध के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- भारत और अमेरिका में न्यायिक सक्रियता की अवधारणा के विकास और ऐतिहासिक प्रक्षेपवक्र का पता लगाना।
- दोनों देशों में न्यायिक सक्रियता को सक्षम करने वाले संवैधानिक प्रावधानों और न्यायिक सिद्धांतों का विश्लेषण करना।
- ऐतिहासिक और समकालीन न्यायिक निर्णयों (Landmark Case Studies) के माध्यम से दोनों देशों में न्यायिक सक्रियता की कार्यप्रणाली की तुलना करना।
- न्यायिक सक्रियता के संबंध में दोनों देशों में मौजूद आलोचनाओं और विवादों का मूल्यांकन करना।
- अंत में, इन दो मॉडलों के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर लोकतंत्र में न्यायपालिका की भूमिका पर एक व्यापक समझ विकसित करना।

1.4 शोध का महत्व (Significance of the Research) : यह अध्ययन अकादमिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। अकादमिक रूप से, यह **तुलनात्मक संवैधानिक कानून** और **तुलनात्मक राजनीति** के क्षेत्र में योगदान देगा। यह इस बात की गहरी समझ प्रदान करेगा कि कैसे समान लोकतांत्रिक मूल्य अलग-अलग संवैधानिक और सामाजिक संदर्भों में भिन्न न्यायिक परिणामों को जन्म दे सकते हैं। व्यावहारिक रूप से, यह अध्ययन नीति निर्माताओं, कानून के छात्रों, और नागरिक समाज के लिए प्रासंगिक है क्योंकि यह लोकतंत्र में न्यायिक शक्ति की सीमाओं और संभावनाओं पर चल रही बहस को सूचित करता है। दुनिया भर में लोकतंत्र और अधिनायकवाद के बीच बढ़ती बहस के संदर्भ में, एक स्वतंत्र और प्रभावी (लेकिन जवाबदेह) न्यायपालिका की भूमिका को समझना पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

2: साहित्य समीक्षा (Literature Review) : इस अध्याय में, न्यायिक सक्रियता से संबंधित मौजूदा अकादमिक साहित्य की समीक्षा की जाएगी। यह समीक्षा तीन भागों में विभाजित है: पहला, न्यायिक सक्रियता की सामान्य सैद्धांतिक समझ; दूसरा, अमेरिकी संदर्भ में इस पर हुआ विमर्श; और तीसरा, भारतीय संदर्भ में इसका विश्लेषण।

2.1 न्यायिक सक्रियता: एक सैद्धांतिक अवलोकन : "न्यायिक सक्रियता" शब्द का पहली बार प्रयोग इतिहासकार **आर्थर एम. स्लेसिंगर जूनियर (Arthur M. Schlesinger Jr.)** ने 1947 में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों के व्यवहार का वर्णन करने के लिए किया था (Schlesinger, 1947)। यह अवधारणा आम तौर पर **न्यायिक संयम (Judicial Restraint)** के विपरीत खड़ी होती है, जो इस विश्वास पर आधारित है कि न्यायाधीशों को कानून की व्याख्या करने में संयम बरतना चाहिए और नीति-निर्माण का कार्य निर्वाचित शाखाओं (विधायिका और कार्यपालिका) के लिए छोड़ देना चाहिए।

विद्वानों ने न्यायिक सक्रियता को विभिन्न तरीकों से परिभाषित किया है। यह अक्सर संविधान की एक व्यापक, उद्देश्यपूर्ण व्याख्या से जुड़ा होता है, जिसे 'लिविंग कॉन्स्टिट्यूशन' (Living Constitution) का सिद्धांत कहा जाता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, संविधान के अर्थ को समकालीन सामाजिक मूल्यों के आलोक में विकसित होना चाहिए। इसके विपरीत 'मूलभूतता' (Originalism) का सिद्धांत है, जो तर्क देता है कि संविधान की व्याख्या उसके निर्माताओं के मूल इरादे के अनुसार की जानी चाहिए (Scalia, 1997)।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि न्यायिक सक्रियता किसी विशेष विचारधारा (उदारवादी या रूढ़िवादी) से बंधी नहीं है। उदारवादी सक्रियता का उद्देश्य नागरिक अधिकारों का विस्तार करना हो सकता है, जबकि रूढ़िवादी सक्रियता का उद्देश्य सरकारी नियमों को सीमित करना या पूर्व के उदारवादी निर्णयों को पलटना हो सकता है।

2.2 संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायिक सक्रियता पर विमर्श : अमेरिकी अकादमिक जगत में न्यायिक सक्रियता पर बहस बहुत पुरानी है। इसकी जड़ें **'मार्बरी बनाम मैडिसन' (1803)** के फैसले तक जाती हैं, जिसने न्यायिक समीक्षा की नींव रखी। हालांकि, 20वीं सदी में, विशेष रूप से **मुख्य न्यायाधीश अर्ल वॉरेन (Earl Warren) के नेतृत्व वाले वॉरेन कोर्ट (1953-1969)** के दौरान, न्यायिक सक्रियता अपने चरम पर पहुँची। वॉरेन कोर्ट ने **'ब्राउन बनाम शिक्षा बोर्ड' (1954)** जैसे ऐतिहासिक फैसले दिए, जिसने नस्लीय अलगाव को समाप्त कर दिया और नागरिक अधिकारों के आंदोलन को गति दी। **रोनाल्ड ड्वॉर्किन (Ronald Dworkin)** जैसे विद्वानों ने संविधान की "नैतिक व्याख्या" (moral reading) का समर्थन करते हुए तर्क दिया कि न्यायाधीशों को न्याय के सिद्धांतों के आधार पर निर्णय लेना चाहिए, भले ही वे संविधान के पाठ में स्पष्ट रूप से न लिखे हों (Dworkin, 1996)।

इसके विपरीत, **रॉबर्ट बोर्क (Robert Bork)** जैसे आलोचकों ने तर्क दिया है कि इस तरह की सक्रियता अलोकतांत्रिक है और न्यायाधीशों को "अचयनित विधायक" बना देती है। हाल के दशकों में, यह बहस और भी तीव्र हो गई है, जिसमें समलैंगिक विवाह, बंदूक अधिकार और गर्भपात जैसे मुद्दों पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले शामिल हैं। **'डॉब्स' (2022)** का निर्णय इस बहस का नवीनतम और सबसे ज्वलंत उदाहरण है, जो दिखाता है कि न्यायिक दर्शन और राजनीतिक विचारधारा के बीच की रेखा कितनी धुंधली हो सकती है।

2.3 भारत में न्यायिक सक्रियता पर विमर्श : भारत में न्यायिक सक्रियता का प्रक्षेपवक्र अमेरिका से मौलिक रूप से भिन्न है। इसका उदय 1975-77 के आपातकाल की काली अवधि के बाद हुआ, जब न्यायपालिका की विश्वसनीयता गंभीर रूप से कम हो गई थी। अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को फिर से हासिल करने के प्रयास में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक परिवर्तनकारी भूमिका अपनाई। **न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती** और **न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर** को भारत में न्यायिक सक्रियता और **जनहित याचिका (PIL)** का प्रणेता माना जाता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री **उपेंद्र बख्शी (Upendra Baxi)** ने इसे पारंपरिक मुकदमेबाजी से अलग करने के लिए "सोशल एक्शन लिटिगेशन" (Social Action Litigation) शब्द गढ़ा। बख्शी का तर्क था कि भारतीय सुप्रीम कोर्ट ने गरीबों और हाशिए पर पड़े लोगों के लिए न्याय तक पहुँच को लोकतांत्रिक बनाया, जिससे यह "उत्पीड़ितों और चकितों के लिए अंतिम उपाय" बन गया (Baxi, 1985)। **एस.पी. साठे (S.P. Sathe)** जैसे विद्वानों ने अपनी पुस्तक "Judicial Activism in India: Transgressing Borders and Enforcing Limits" में इसके विकास और सीमाओं का विस्तृत विश्लेषण किया है। उन्होंने तर्क दिया कि भारतीय सक्रियता ने न केवल मौलिक अधिकारों का विस्तार किया (जैसे 'जीवन के अधिकार' में 'गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार' शामिल करना) बल्कि शासन के क्षेत्र में भी प्रवेश किया, जिसे "न्यायिक शासन" (judicial governance) कहा जा सकता है।

हालांकि, **प्रताप भानु मेहता (Pratap Bhanu Mehta)** जैसे आलोचकों ने भारतीय न्यायपालिका के इस बढ़ते दखल को लेकर चेतावनी दी है। उनका तर्क है कि यह अक्सर विशेषज्ञता के बिना नीतिगत मामलों में हस्तक्षेप करता है और शक्ति के पृथक्करण के सिद्धांत को कमजोर करता है, जिससे इसकी अपनी जवाबदेही कम हो जाती है (Mehta, 2007)।

2.4 शोध में अंतर (Research Gap) : मौजूदा साहित्य ने भारत और अमेरिका में न्यायिक सक्रियता का अलग-अलग गहराई से विश्लेषण किया है। हालांकि, अधिकांश अध्ययन या तो एक देश पर केंद्रित हैं या एक विशिष्ट कानूनी मुद्दे पर। हाल के राजनीतिक और न्यायिक विकासों, जैसे अमेरिका में सुप्रीम कोर्ट की बदलती संरचना और भारत में कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच बढ़ते तनाव, को ध्यान में रखते हुए एक अद्यतन और व्यापक **तुलनात्मक विश्लेषण** की आवश्यकता है। यह शोध पत्र इसी अंतर को भरने का प्रयास करेगा, यह विश्लेषण करके कि ये दो परिपक्व लोकतंत्र अपनी न्यायपालिकाओं की शक्ति और भूमिका के साथ कैसे तालमेल बिठा रहे हैं।

3: संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायिक सक्रियता: उद्भव, उपकरण और ऐतिहासिक मामले

3.1 संवैधानिक बुनियाद और 'मार्बरी बनाम मैडिसन' का युगांतकारी निर्णय : संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान को जब 1787 में तैयार किया गया, तो निर्माताओं ने न्यायपालिका को सरकार की अन्य दो शाखाओं की तुलना में स्वाभाविक रूप से कम शक्तिशाली माना था। अलेक्जेंडर हैमिल्टन ने **'द फेडरलिस्ट पेपर्स, नंबर 78'** में इसे "सबसे कम खतरनाक शाखा" (the least dangerous branch) के रूप में वर्णित किया, क्योंकि इसके पास न तो "तलवार की शक्ति" (कार्यपालिका की तरह) थी और न ही "पर्स की शक्ति" (विधायिका की तरह), केवल "निर्णय की शक्ति" (the power of judgment) थी (Hamilton, 1788)। दिलचस्प बात यह है कि संविधान का पाठ स्पष्ट रूप से सर्वोच्च न्यायालय को कांग्रेस द्वारा बनाए गए कानूनों को रद्द करने की शक्ति, यानी **न्यायिक समीक्षा (Judicial Review)**, प्रदान नहीं करता है। यह वह शक्ति है जिसे न्यायपालिका ने स्वयं अर्जित किया, और इस कहानी का केंद्र है मुख्य न्यायाधीश जॉन मार्शल का युगांतकारी निर्णय।

यह शक्ति 1803 के ऐतिहासिक मामले, **'मार्बरी बनाम मैडिसन' (Marbury v. Madison)**, में स्थापित हुई। इस मामले की पृष्ठभूमि गहन राजनीतिक थी। 1800 के चुनाव में, राष्ट्रपति जॉन एडम्स और उनकी संघीय पार्टी, थॉमस जेफरसन और उनकी डेमोक्रेटिक-रिपब्लिकन पार्टी से हार गई थी। सत्ता छोड़ने से ठीक पहले, एडम्स ने अपने वैचारिक सहयोगियों को न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करने की

हड़बड़ी की, जिन्हें "मिडनाइट जजेज" (midnight judges) कहा गया। विलियम मार्बरी भी इन्हीं में से एक थे, लेकिन सत्ता परिवर्तन के कारण उन्हें अपना नियुक्ति पत्र प्राप्त नहीं हो सका। नए राष्ट्रपति जेफरसन के राज्य सचिव, जेम्स मैडिसन ने यह पत्र देने से इनकार कर दिया।

मार्बरी ने सीधे सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की और मांग की कि न्यायालय मैडिसन को नियुक्ति पत्र जारी करने का आदेश दे। मुख्य न्यायाधीश जॉन मार्शल के सामने एक विकट दुविधा थी। यदि वह जेफरसन प्रशासन को आदेश देते, तो इस बात की पूरी संभावना थी कि प्रशासन इसे अनदेखा कर देता, जिससे न्यायालय की शक्तिहीनता उजागर हो जाती। यदि वह मार्बरी की याचिका खारिज कर देते, तो यह न्यायपालिका के कार्यपालिका के सामने झुकने जैसा प्रतीत होता।

मार्शल ने एक असाधारण कानूनी और राजनीतिक कौशल का प्रदर्शन किया। उन्होंने अपने फैसले में कहा कि:

1. हाँ, विलियम मार्बरी को अपना नियुक्ति पत्र पाने का कानूनी अधिकार है।
2. हाँ, अमेरिकी कानून उन्हें इस अधिकार के उल्लंघन के लिए एक उपाय प्रदान करता है।
3. **लेकिन**, सर्वोच्च न्यायालय उन्हें यह उपाय (आदेश जारी करके) प्रदान नहीं कर सकता।

इसका कारण बताते हुए मार्शल ने तर्क दिया कि जिस कानून (न्यायपालिका अधिनियम 1789) के तहत मार्बरी ने सीधे सर्वोच्च न्यायालय में अपील की थी, वह स्वयं असंवैधानिक था। उन्होंने कहा कि यह कानून संविधान द्वारा निर्धारित सर्वोच्च न्यायालय के मूल अधिकार क्षेत्र (original jurisdiction) का विस्तार करता है, और कांग्रेस के पास संविधान के प्रावधानों को बदलने की शक्ति नहीं है। इस एक ही फैसले में, मार्शल ने संविधान को राष्ट्र के सर्वोच्च कानून के रूप में स्थापित किया और यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि "यह निश्चित रूप से न्यायपालिका का प्रांत और कर्तव्य है कि वह कहे कि कानून क्या है" ("It is emphatically the province and duty of the judicial department to say what the law is")। इस प्रकार, एक छोटे, तात्कालिक टकराव से बचते हुए, मार्शल ने न्यायपालिका के लिए न्यायिक समीक्षा की अपार शक्ति हासिल कर ली, जिसने इसे सरकार की एक सह-समान शाखा में बदल दिया।

3.2 न्यायिक सक्रियता के उपकरण : अमेरिकी न्यायाधीशों ने न्यायिक सक्रियता को व्यवहार में लाने के लिए मुख्य रूप से दो वैचारिक उपकरणों का उपयोग किया है:

- **संविधान की व्यापक व्याख्या (Broad Interpretation of the Constitution):** न्यायिक सक्रियता का मूल आधार संविधान की व्याख्या के दर्शन में निहित है। न्यायाधीश अक्सर संविधान को एक **"जीवंत दस्तावेज़" (Living Constitution)** के रूप में देखते हैं, जिसका अर्थ समय के साथ समाज की बदलती जरूरतों और मूल्यों के अनुसार विकसित हो सकता है। यह दृष्टिकोण **'मूलभूतता' (Originalism)** के विपरीत है, जो मानता है कि संविधान की व्याख्या उसके निर्माताओं के मूल इरादे के अनुसार ही की जानी चाहिए। 14वें संशोधन के **"उचित प्रक्रिया" (Due Process)** और **"समान संरक्षण" (Equal Protection)** जैसे खंडों की भाषा जानबूझकर व्यापक रखी गई है, जिससे न्यायाधीशों को नस्लीय समानता, व्यक्तिगत गोपनीयता और अन्य अधिकारों को उन तरीकों से लागू करने की गुंजाइश मिलती है जिनकी 18वीं या 19वीं सदी में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।
- **पूर्व-निर्णय (Stare Decisis) के सिद्धांत को उलटना:** 'Stare Decisis' एक लैटिन वाक्यांश

है जिसका अर्थ है "तय की गई बातों पर قائم ربنا"। यह सिद्धांत स्थिरता और पूर्वानुमेयता के लिए अदालतों को अपने पिछले फैसलों का पालन करने के लिए बाध्य करता है। हालांकि, न्यायिक सक्रियता का एक स्पष्ट संकेत तब मिलता है जब सर्वोच्च न्यायालय समाज में एक बड़े बदलाव को प्रतिबिंबित करने या पिछली गलती को सुधारने के लिए एक लंबे समय से स्थापित मिसाल को उलटने का फैसला करता है। इसका सबसे प्रसिद्ध उदाहरण **'ब्राउन बनाम शिक्षा बोर्ड'** द्वारा **'प्लेसी बनाम फर्ग्यूसन'** के 'अलग लेकिन बराबर' के सिद्धांत को उलटना था।

3.3 न्यायिक सक्रियता के ऐतिहासिक चरण और प्रमुख मामले : अमेरिकी न्यायिक सक्रियता को कुछ विशिष्ट अदालती युगों और उनके ऐतिहासिक मामलों के माध्यम से सबसे अच्छी तरह समझा जा सकता है।

- **वॉरेन कोर्ट (1953-1969): उदारवादी सक्रियता का शिखर** मुख्य न्यायाधीश अर्ल वॉरेन की अध्यक्षता वाला न्यायालय अमेरिकी इतिहास में न्यायिक सक्रियता का सबसे प्रतिष्ठित प्रतीक है। इस अदालत ने नागरिक अधिकारों और नागरिक स्वतंत्रता के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी।
- **ब्राउन बनाम शिक्षा बोर्ड (1954):** इस सर्वसम्मत फैसले ने सार्वजनिक स्कूलों में नस्लीय अलगाव को असंवैधानिक घोषित किया, जिससे अमेरिकी समाज का चेहरा हमेशा के लिए बदल गया। न्यायालय ने कानूनी तर्कों के साथ-साथ सामाजिक विज्ञान के सबूतों का भी इस्तेमाल यह दिखाने के लिए किया कि अलगाव काले बच्चों में हीनता की भावना पैदा करता है।
- **मिरांडा बनाम एरिज़ोना (1966):** इस मामले ने "मिरांडा राइट्स" को जन्म दिया, जिसके तहत पुलिस को गिरफ्तार किए गए किसी भी व्यक्ति को यह सूचित करना अनिवार्य है कि उन्हें चुप रहने का अधिकार है और एक वकील का अधिकार है। इसने आपराधिक न्याय प्रक्रिया को मौलिक रूप से बदल दिया।
- **बर्गर और रेनक्विस्ट कोर्ट्स (1969-2005): एक मिश्रित विरासत** वॉरेन कोर्ट के बाद की अदालतों को अक्सर अधिक रूढ़िवादी माना जाता है, लेकिन उन्होंने भी महत्वपूर्ण सक्रिय निर्णय दिए।
- **रो बनाम वेड (1973):** बर्गर कोर्ट ने इस ऐतिहासिक फैसले में कहा कि 14वें संशोधन के तहत "गोपनीयता के अधिकार" में एक महिला का गर्भपात कराने का निर्णय भी शामिल है। यह निर्णय दशकों तक अमेरिकी राजनीति में एक केंद्रीय विभाजन रेखा बना रहा।
- **बुश बनाम गोर (2000):** शायद सबसे विवादास्पद फैसलों में से एक, जिसमें रेनक्विस्ट कोर्ट ने फ्लोरिडा में वोटों की पुनर्गणना को रोककर 2000 के राष्ट्रपति चुनाव के परिणाम को प्रभावी ढंग से तय कर दिया। आलोचकों ने इसे एक राजनीतिक मुद्दे में अभूतपूर्व न्यायिक हस्तक्षेप के रूप में देखा।
- **रॉबर्ट्स कोर्ट (2005-वर्तमान): वैचारिक विभाजन और रूढ़िवादी सक्रियता** मुख्य न्यायाधीश जॉन रॉबर्ट्स की अध्यक्षता वाली वर्तमान अदालत वैचारिक रूप से विभाजित है और इसने कई ऐसे फैसले दिए हैं जिन्हें रूढ़िवादी सक्रियता का उदाहरण माना जाता है।
- **सिटिजन्स यूनाइटेड बनाम संघीय चुनाव आयोग (2010):** इस फैसले ने निगमों और यूनियनों को राजनीतिक अभियानों पर असीमित धन खर्च करने की अनुमति दी, यह तर्क देते हुए कि यह उनके मुक्त भाषण के अधिकार का हिस्सा है। इसने अमेरिकी चुनावों के वित्तपोषण के परिदृश्य को बदल दिया।
- **डॉब्स बनाम जैक्सन महिला स्वास्थ्य संगठन (2022):** यह हाल के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण निर्णय है। इसमें, न्यायालय ने **'रो**

बनाम वेड' और **'प्लांड पेरेंटहुड बनाम केसी'** के लगभग 50 वर्षों के पूर्व-निर्णय को पलट दिया और घोषित किया कि गर्भपात का कोई संवैधानिक अधिकार नहीं है। इस फैसले के समर्थकों ने इसे न्यायिक संयम की वापसी के रूप में सराहा (मुद्दे को राज्यों को लौटाना), जबकि आलोचकों ने इसे स्थापित अधिकारों को छीनने और लाखों महिलाओं के जीवन को बदलने के लिए एक आक्रामक न्यायिक सक्रियता का कार्य बताया।

संक्षेप में, अमेरिकी न्यायिक सक्रियता की कहानी एक शक्तिशाली, गतिशील और गहराई से विवादित प्रक्रिया की कहानी है। यह **'मार्बरी बनाम मैडिसन'** में न्यायिक समीक्षा की साहसिक स्थापना से लेकर वॉरेन कोर्ट के क्रांतिकारी सामाजिक सुधारों और रॉबर्ट्स कोर्ट के हालिया वैचारिक रूप से प्रेरित परिवर्तनों तक फैली हुई है। यह मॉडल, जो मुख्य रूप से संवैधानिक अधिकारों की व्याख्या पर केंद्रित है, भारत में प्रचलित न्यायिक सक्रियता के मॉडल से बहुत अलग है।

4: भारत में न्यायिक सक्रियता: एक परिवर्तनकारी यात्रा

4.1 संवैधानिक प्रावधान और प्रारंभिक वर्ष: संयम का दौर (1950-1970) : भारतीय संविधान के निर्माताओं ने न्यायपालिका को एक महत्वपूर्ण लेकिन संतुलित भूमिका सौंपी थी। उन्होंने इसे नागरिकों के मौलिक अधिकारों का संरक्षक बनाया। संविधान के **अनुच्छेद 32** ने नागरिकों को अपने मौलिक अधिकारों के हनन पर सीधे सर्वोच्च न्यायालय जाने का अधिकार देकर इसे "संविधान की आत्मा और हृदय" का दर्जा दिया। इसके साथ ही, **अनुच्छेद 226** ने उच्च न्यायालयों को भी समान शक्तियाँ प्रदान कीं, और **अनुच्छेद 13** ने न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा की स्पष्ट शक्ति दी।

इसके बावजूद, अपनी स्थापना के बाद लगभग दो दशकों तक, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने काफी हद तक **न्यायिक संयम (Judicial Restraint)** की ब्रिटिश परंपरा का पालन किया। इस प्रारंभिक दौर में, अदालत ने एक शाब्दिक और सकारात्मकवादी दृष्टिकोण अपनाया, जिसमें कानूनों की व्याख्या उनके लिखे हुए पाठ के अनुसार की जाती थी और नीति-निर्माण को पूरी तरह से विधायिका के क्षेत्र में माना जाता था। इस अवधि में न्यायपालिका और संसद के बीच पहला बड़ा टकराव 'संपत्ति के अधिकार' को लेकर हुआ। **'शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ' (1951)** और **'सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य' (1965)** जैसे मामलों में, अदालत ने संसद के मौलिक अधिकारों में संशोधन करने के अधिकार को बरकरार रखा।

इस संयम के दौर में पहला निर्णायक मोड़ **'गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य' (1967)** के मामले में आया। इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पिछले फैसलों को पलटते हुए एक क्रांतिकारी फैसला सुनाया कि संसद के पास मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति नहीं है। इस फैसले ने न्यायपालिका और तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली शक्तिशाली संसद के बीच एक सीधे टकराव की नींव रखी, जिसने भारतीय लोकतंत्र की दिशा को हमेशा के लिए बदल दिया।

4.2 आपातकाल का अंधकार और न्यायपालिका का पुनर्जन्म ; 'गोलकनाथ' के फैसले के बाद, संसद और न्यायपालिका के बीच वर्चस्व की लड़ाई तेज हो गई। सरकार ने संविधान में 24वें और 25वें संशोधन जैसे संशोधनों के माध्यम से न्यायपालिका की शक्ति को कम करने का प्रयास किया। इस संघर्ष का समापन **'केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य' (1973)** के ऐतिहासिक मामले में हुआ, जो शायद भारतीय संवैधानिक इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण मामला है। 13 न्यायाधीशों की अब तक की सबसे बड़ी पीठ ने एक ऐतिहासिक निर्णय दिया, जिसने **"संविधान के मूल ढांचे" (Basic Structure**

Doctrine) के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। अदालत ने फैसला सुनाया कि संसद को संविधान में संशोधन करने का अधिकार तो है, लेकिन वह इसकी "मूल संरचना" या "बुनियादी विशेषताओं" (जैसे लोकतंत्र, संघवाद, धर्मनिरपेक्षता, और शक्तियों का पृथक्करण) को नष्ट या परिवर्तित नहीं कर सकती। यह न्यायपालिका द्वारा अपनी शक्ति का एक अभूतपूर्व दावा था, जिसने संसद की संशोधन शक्ति पर एक स्थायी सीमा लगा दी।

लेकिन इस साहसिक कदम के तुरंत बाद भारतीय न्यायपालिका का सबसे अंधकारमय अध्याय आया। 1975 में आपातकाल की घोषणा के बाद, नागरिक स्वतंत्रता को निलंबित कर दिया गया। इस दौरान, **'एडीएम जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला' (1976)**, जिसे बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) मामला भी कहा जाता है, में सर्वोच्च न्यायालय ने एक बेहद विवादास्पद फैसला सुनाया। अदालत ने कहा कि आपातकाल के दौरान, नागरिकों को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 21) के हनन के खिलाफ अदालत जाने का कोई अधिकार नहीं है। इस एक फैसले ने न्यायपालिका की प्रतिष्ठा को चकनाचूर कर दिया और इसे नागरिक अधिकारों के रक्षक के बजाय कार्यपालिका के एक उपकरण के रूप में देखा जाने लगा। यही वह ऐतिहासिक विफलता थी जिसने आपातकाल के बाद अदालत को अपनी खोई हुई विश्वसनीयता को फिर से हासिल करने और एक अभूतपूर्व रूप से सक्रिय भूमिका अपनाने के लिए प्रेरित किया।

4.3 जनहित याचिका (PIL) का युग: सामाजिक न्याय का एक नया अध्याय : आपातकाल के बाद की अवधि में, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी छवि को सुधारने और आम आदमी के लिए न्याय को सुलभ बनाने के लिए एक क्रांतिकारी उपकरण का आविष्कार किया: **जनहित याचिका (Public Interest Litigation - PIL)**। यह न्यायिक सक्रियता का सबसे शक्तिशाली भारतीय मॉडल बन गया। इसके प्रणेता **न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर** और **न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती** थे, जिन्होंने न्याय की पारंपरिक अवधारणा को बदल दिया।

इस क्रांति का मूल आधार **'लोकस स्टैंडी' (Locus Standi)** के पारंपरिक नियम को शिथिल करना था। पारंपरिक कानून के तहत, केवल वही व्यक्ति अदालत जा सकता था जिसके अधिकारों का सीधे तौर पर हनन हुआ हो। लेकिन जनहित याचिका ने किसी भी सार्वजनिक-उत्साही नागरिक या सामाजिक संगठन को गरीबों, वंचितों, और उन लोगों की ओर से याचिका दायर करने की अनुमति दी जो स्वयं अदालत तक नहीं पहुँच सकते थे। **'एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ' (1981)** मामले ने जनहित याचिका को औपचारिक रूप से संस्थागत बना दिया।

न्यायालय ने "पत्राचार क्षेत्राधिकार" (Epistolary Jurisdiction) का भी विकास किया, जहाँ न्यायाधीशों ने नागरिकों द्वारा लिखे गए साधारण पत्रों और पोस्टकार्डों को भी रिट याचिकाओं के रूप में स्वीकार करना शुरू कर दिया। इस उपकरण के माध्यम से, अदालत ने सामाजिक और आर्थिक न्याय के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर हस्तक्षेप किया:

- **हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य (1979):** बिहार की जेलों में वर्षों से बंद हजारों विचाराधीन कैदियों के मामले में, अदालत ने 'त्वरित सुनवाई के अधिकार' को अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार का एक अभिन्न अंग घोषित किया।
- **बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ (1984):** इस मामले में, अदालत ने बंधुआ मजदूरों की मुक्ति और उनके पुनर्वास के लिए विस्तृत निर्देश जारी किए।
- **मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978):** इस मामले ने अनुच्छेद 21 ("जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार") की व्याख्या को हमेशा

के लिए बदल दिया। अदालत ने कहा कि इस अधिकार का अर्थ केवल शारीरिक अस्तित्व नहीं है, बल्कि "गरिमा के साथ जीवन" है। इस एक व्याख्या ने भविष्य में स्वच्छ पर्यावरण, आजीविका, शिक्षा और स्वास्थ्य के अधिकारों को मौलिक अधिकारों के दायरे में लाने का मार्ग प्रशस्त किया।

- **एम.सी. मेहता मामले:** वकील एम.सी. मेहता द्वारा दायर की गई दर्जनों जनहित याचिकाओं ने भारत में पर्यावरण कानून को जन्म दिया। गंगा प्रदूषण से लेकर दिल्ली के वायु प्रदूषण तक, अदालत ने उद्योगों को स्थानांतरित करने, वाहनों के लिए उत्सर्जन मानक तय करने और पर्यावरण की रक्षा के लिए कई निर्देश दिए, जो स्पष्ट रूप से कार्यपालिका के क्षेत्र में आते थे।

4.4 न्यायिक शासन और आलोचनाएँ : 1990 और 2000 के दशक तक, भारतीय न्यायिक सक्रियता सामाजिक न्याय से आगे बढ़कर **"न्यायिक शासन" (Judicial Governance)** के क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी थी। अदालत अब केवल अधिकारों की व्याख्या नहीं कर रही थी, बल्कि नीति बना रही थी और उनके कार्यान्वयन की निगरानी भी कर रही थी।

- **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997):** जब कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए कोई कानून नहीं था, तो सर्वोच्च न्यायालय ने विस्तृत "विशाखा दिशानिर्देश" जारी किए, जो संसद द्वारा कानून बनाए जाने तक पूरे देश में लागू रहे। यह "न्यायिक विधान" का एक स्पष्ट उदाहरण था।
- **हाल के उदाहरण (2020-2025):** हाल के वर्षों में भी यह प्रवृत्ति जारी रही है। अदालत ने COVID-19 महामारी के दौरान ऑक्सीजन की आपूर्ति और वैक्सीन नीति के वितरण की निगरानी की। **2024 में, इसने चुनावी पारदर्शिता को बढ़ावा देने के लिए विवादास्पद चुनावी बॉन्ड (Electoral Bonds) योजना को असंवैधानिक घोषित कर दिया।** इसके अलावा, न्यायाधीशों की नियुक्ति की कॉलेजियम प्रणाली को लेकर न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच लगातार तनाव बना हुआ है, जिसे कई लोग न्यायिक स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए आवश्यक मानते हैं, तो अन्य इसे भाई-भतीजावाद और जवाबदेही की कमी का स्रोत मानते हैं।

हालांकि भारतीय न्यायिक सक्रियता को विश्व स्तर पर सराहा गया है, लेकिन इसकी गंभीर आलोचना भी हुई है:

1. **न्यायिक अतिक्रमण (Judicial Overreach):** सबसे प्रमुख आलोचना यह है कि न्यायपालिका अक्सर शक्ति के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करती है और विधायिका तथा कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश करती है।
2. **संस्थागत क्षमता का अभाव:** आलोचकों का तर्क है कि न्यायाधीशों के पास जटिल नीतिगत मामलों (जैसे शहरी नियोजन या आर्थिक नीति) में निर्णय लेने के लिए आव- श्यक विशेषज्ञता या संसाधन नहीं होते हैं।
3. **जवाबदेही की कमी:** न्यायाधीश अ-निर्वाचित होते हैं और अपने फैसलों के लिए सीधे जनता के प्रति जवाबदेह नहीं होते हैं, जो लोकतंत्र के मूल सिद्धांत के विरुद्ध है।
4. **लंबित मामले:** यह एक विडंबना है कि जिस अदालत ने जनहित याचिकाओं के माध्यम से लाखों लोगों को न्याय दिया है, उसी की अपनी व्यवस्था में करोड़ों सामान्य मामले दशकों से लंबित पड़े हैं।

संक्षेप में, भारतीय न्यायिक सक्रियता की यात्रा आपातकाल की राख से उठकर दुनिया में सबसे शक्तिशाली और हस्तक्षेपकारी न्यायपालिका बनने की एक असाधारण कहानी है। इसने सामाजिक न्याय के

लिए अपार योगदान दिया है, लेकिन साथ ही इसने लोकतांत्रिक जवाबदेही और संस्थागत सीमाओं के बारे में गंभीर सवाल भी खड़े किए हैं। यह अमेरिकी मॉडल के विपरीत है, जो अधिकारों की व्याख्या तक अधिक सीमित है।

5: न्यायिक सक्रियता के दो मॉडल: एक तुलनात्मक विश्लेषण

5.1 परिचय : पिछले दो अध्यायों में हमने संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत में न्यायिक सक्रियता के विकास, उपकरणों और ऐतिहासिक मामलों की विस्तृत विवेचना की है। हमने देखा कि कैसे अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने 'मार्बरी बनाम मैडिसन' से लेकर 'डॉब्स' तक के सफर में संवैधानिक अधिकारों की व्याख्या के माध्यम से अपनी शक्ति का प्रयोग किया। वहीं, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपातकाल की राख से उठकर 'जनहित याचिका' और 'मूल ढांचे' के सिद्धांत के माध्यम से सामाजिक न्याय के एक नए युग का सूत्रपात किया। यह अध्याय इन दोनों यात्राओं से प्राप्त निष्कर्षों को एक साथ लाकर एक व्यवस्थित तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करेगा।

इस अध्याय का केंद्रीय तर्क यह है कि भारत और अमेरिका में न्यायिक सक्रियता केवल मात्रा या डिग्री में भिन्न नहीं है, बल्कि यह प्रकृति और उद्देश्य में मौलिक रूप से अलग है। ये लोकतंत्र में न्यायिक भूमिका के दो अलग-अलग प्रतिमानों (paradigms) का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्हें उनके अद्वितीय ऐतिहासिक अनुभवों, संवैधानिक दर्शन और सामाजिक अनिवार्यताओं ने गढ़ा है।

5.2 उद्भव और प्रेरणा: ऐतिहासिक संदर्भ का अंतर : किसी भी संस्था का चरित्र उसके जन्म के समय की परिस्थितियों से आकार लेता है। न्यायिक सक्रियता के मामले में यह बात बिल्कुल सटीक बैठती है।

- **संयुक्त राज्य अमेरिका:** अमेरिकी न्यायिक सक्रियता का जन्म एक युवा गणराज्य में **शक्ति के दावे (assertion of power)** के रूप में हुआ था। यह 'मार्बरी बनाम मैडिसन' के राजनीतिक संकट से उभरी, जहाँ न्यायपालिका को खुद को सरकार की एक सह-समान शाखा के रूप में स्थापित करने की आवश्यकता थी। इसकी मुख्य प्रेरणा 'बहुमत के अत्याचार' (tyranny of the majority) से अल्पसंख्यक अधिकारों और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना रही है। 20वीं सदी में वॉरेन कोर्ट की सक्रियता का पूरा दौर नागरिक अधिकार आंदोलन की प्रतिक्रिया थी, जिसका उद्देश्य संविधान में निहित **नकारात्मक अधिकारों (negative rights)** - यानी राज्य के हस्तक्षेप से स्वतंत्रता - को लागू करना था। यह एक आत्मविश्वास से भरे लोकतंत्र का उत्पाद है, जहाँ अदालत अन्य शाखाओं पर नियंत्रण रखती है।
- **भारत:** इसके विपरीत, भारतीय न्यायिक सक्रियता का जन्म **शासन की विफलता और न्यायिक प्रायश्चित (atonement)** से हुआ। यह 1975-77 के आपातकाल के उस भयावह अनुभव के बाद उभरी, जब सर्वोच्च न्यायालय 'एडीएम जबलपुर' मामले में नागरिकों के जीवन के अधिकार की रक्षा करने में विफल रहा था। अपनी खोई हुई विश्वसनीयता को फिर से पाने के लिए, अदालत ने एक उद्धारकर्ता की भूमिका अपनाई। इसकी मुख्य प्रेरणा देश की विशाल गरीब और वंचित आबादी को सामाजिक-आर्थिक न्याय दिलाना था, जहाँ विधायिका और कार्यपालिका अक्सर उदासीन या अक्षम दिखाई देती थीं (Baxi, 1985)। इसका उद्देश्य संविधान के **सकारात्मक अधिकारों (positive rights)** और नीति निदेशक तत्वों (Directive Principles) को वास्तविकता में बदलना था। यह एक लोकतांत्रिक चिंता का उत्पाद है, जहाँ अदालत अन्य शाखाओं की विफलता के कारण खाली हुए स्थान को भरती है।

5.3 उपकरण और कार्यप्रणाली: पहुँच और प्रक्रिया का अंतर : दोनों न्यायपालिकाओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपकरण उनके अलग-अलग उद्देश्यों को दर्शाते हैं।

- **संयुक्त राज्य अमेरिका:** यहाँ प्राथमिक उपकरण **न्यायिक समीक्षा (Judicial Review)** है, जो **'लोकस स्टैंडी' (Locus Standi)** के सख्त नियम से बंधी है। इसका मतलब है कि केवल वही पक्ष अदालत जा सकता है जिसे सीधे तौर पर कोई व्यक्तिगत क्षति हुई हो। प्रक्रिया पूरी तरह से पारंपरिक, औपचारिक और पक्ष-विपक्ष (adversarial) वाली होती है। यह प्रणाली न्याय तक पहुँच को सीमित करती है और इसे एक **'द्वारपाल मॉडल' (gatekeeper model)** बनाती है, जो सावधानीपूर्वक नियंत्रित करता है कि कौन न्यायिक दरवाजे में प्रवेश कर सकता है।
- **भारत:** भारत ने **जनहित याचिका (PIL)** के रूप में एक क्रांतिकारी उपकरण का विकास किया। इसने 'लोकस स्टैंडी' के नियम को लगभग समाप्त कर दिया, जिससे कोई भी व्यक्ति सार्वजनिक हित में अदालत का दरवाजा खटखटा सकता है। प्रक्रिया अक्सर गैर-पारंपरिक और खोजपूर्ण (inquisitorial) होती है, जिसमें अदालत स्वयं समितियों की नियुक्ति कर सकती है, अधिकारियों से रिपोर्ट मांग सकती है, और अपने आदेशों के कार्यान्वयन की निगरानी कर सकती है। यह प्रणाली एक **'पहुँच मॉडल' (outreach model)** है, जो सक्रिय रूप से जनता के लिए न्याय की बाधाओं को कम करने का प्रयास करती है।

5.4 सक्रियता का दायरा: अधिकारों की प्रकृति का अंतर : शायद दोनों मॉडलों के बीच सबसे महत्वपूर्ण अंतर उनके द्वारा संबोधित किए जाने वाले अधिकारों की प्रकृति और सक्रियता के दायरे में है।

- **संयुक्त राज्य अमेरिका:** अमेरिकी सक्रियता का दायरा मुख्य रूप से **नागरिक और राजनीतिक अधिकारों (Civil and Political Rights)** पर केंद्रित रहा है। भाषण की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, अभियुक्तों के अधिकार, समानता का अधिकार और निजता का अधिकार इसके केंद्र में रहे हैं। अदालत शायद ही कभी सरकार को यह निर्देश देती है कि उसे अपना बजट कैसे खर्च करना चाहिए या गरीबी उन्मूलन के लिए कौन सी नीतियां बनानी चाहिए। संक्षेप में, अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट एक **संवैधानिक अंपायर (Constitutional Umpire)** के रूप में कार्य करता है, जो यह सुनिश्चित करता है कि खेल नियमों के अनुसार खेला जाए।
- **भारत:** भारतीय सक्रियता का दायरा बहुत व्यापक है। यह नागरिक और राजनीतिक अधिकारों से बहुत आगे बढ़कर **सामाजिक और आर्थिक अधिकारों (Socio-economic Rights)** को भी अपने में समेट लेता है। भोजन का अधिकार, आश्रय का अधिकार, स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार, और शिक्षा का अधिकार, इन सभी को अदालत ने अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार) की अपनी उदार व्याख्या के माध्यम से मौलिक अधिकारों का दर्जा दिया है। अदालत अक्सर नीतियां बनाती है (जैसे 'विशाखा दिशानिर्देश') और प्रशासनिक निर्देश देती है (जैसे दिल्ली में CNG बसों को अनिवार्य करना)। इस भूमिका में, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय एक अंपायर से कहीं बढ़कर एक **प्रशासक, नीति-निर्माता और लोकपाल (Administrator, Policymaker, and Ombudsman)** के रूप में कार्य करता है।

5.5 लोकतंत्र पर प्रभाव और आलोचनाएँ : अपनी भिन्न प्रकृति के बावजूद, दोनों ही मॉडल **"बहुमत-विरोधी" (counter-majoritarian)** होने के आरोप का सामना करते हैं, जहाँ अ-निर्वाचित न्यायाधीश निर्वाचित प्रतिनिधियों की इच्छा को रद्द

कर देते हैं। दोनों पर ही "न्यायिक अतिक्रमण" का आरोप लगता है और दोनों में ही न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ गहन राजनीतिक विवाद का विषय बन गई हैं। हालांकि, आलोचनाओं की प्रकृति में भी अंतर है:

- **अमेरिका में**, आलोचना अक्सर **वैचारिक (ideological)** होती है। उदारवादी रूढ़िवादी न्यायाधीशों पर सक्रियता का आरोप लगाते हैं ('सिटिजन्स यूनाइटेड', 'डॉब्स') और रूढ़िवादी उदारवादी न्यायाधीशों पर ('रो बनाम वेड', 'ओबरगेफेल')। बहस इस बात पर होती है कि संविधान की सही व्याख्या क्या है।
- **भारत में**, आलोचना अधिक **संस्थागत (institutional)** है। यहाँ सवाल केवल व्याख्या का नहीं, बल्कि अदालत की क्षमता और अधिकार क्षेत्र का है। क्या अदालत को शासन के उन जटिल मामलों में हस्तक्षेप *करना ही चाहिए* जिनके लिए उसके पास विशेषज्ञता नहीं है? (Mehta, 2007)। करोड़ों मामलों के लंबित होने की समस्या इस आलोचना को और भी गंभीर बना देती है।

तुलनात्मक सारणी

मानदंड	संयुक्त राज्य अमेरिका मॉडल	भारतीय मॉडल
प्रेरणा	शक्ति का दावा, अधिकारों की सुरक्षा	शासन की विफलता, सामाजिक न्याय
प्राथमिक उपकरण	न्यायिक समीक्षा	जनहित याचिका (PIL)
पहुँच (Locus Standi)	सख्त और सीमित	लचीला और व्यापक
दायरा	नागरिक और राजनीतिक अधिकार	सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय अधिकार
न्यायालय की भूमिका	संवैधानिक अंपायर	प्रशासक, लोकपाल, नीति-निर्माता
आलोचना का केंद्र	वैचारिक और व्याख्यात्मक	संस्थागत क्षमता और शक्तियों का पृथक्करण

निष्कर्षत:, यह स्पष्ट है कि हम न्यायिक सक्रियता के दो अलग-अलग मॉडलों को देख रहे हैं। अमेरिकी मॉडल एक **व्याख्यात्मक, अधिकार-केंद्रित मॉडल (interpretive, rights-centric model)** है, जो संविधान की सीमाओं के भीतर काम करता है। भारतीय मॉडल एक **परिवर्तनकारी, न्याय-केंद्रित मॉडल (transformative, justice-centric model)** है, जो सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए अक्सर अपनी पारंपरिक सीमाओं को लांघ जाता है। कोई भी मॉडल स्वाभाविक रूप से श्रेष्ठ नहीं है; प्रत्येक अपने राष्ट्र की अनूठी संवैधानिक और सामाजिक यात्रा का प्रतिबिंब है। हालांकि, भारतीय प्रयोग, जितना महत्वाकांक्षी है, उतना ही संवैधानिक संतुलन के लिए बड़े जोखिम भी पैदा करता है।

अध्याय 6: निष्कर्ष और भविष्य की दिशाएँ

6.1 शोध का सारांश : यह शोध पत्र संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत, विश्व के दो सबसे महत्वपूर्ण लोकतंत्रों, में न्यायिक सक्रियता की जटिल और बहुआयामी परिघटना का तुलनात्मक विश्लेषण करने के उद्देश्य से प्रारंभ हुआ था। हमारी यात्रा न्यायिक सक्रियता की सैद्धांतिक अवधारणाओं को समझने से शुरू हुई, जिसके बाद हमने दोनों देशों के विशिष्ट न्यायिक पथों का गहराई से अन्वेषण किया।

हमने देखा कि कैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायिक सक्रियता की नींव मुख्य न्यायाधीश जॉन

मार्शल द्वारा **'मार्बरी बनाम मैडिसन' (1803)** में रखी गई, जिसने न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा की अपार शक्ति प्रदान की। यह मॉडल मुख्य रूप से नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की व्याख्या के इर्द-गिर्द विकसित हुआ, जिसने वॉरेन कोर्ट के उदारवादी फैसलों से लेकर रॉबर्ट्स कोर्ट के हालिया वैचारिक रूप से प्रेरित निर्णयों, जैसे **'डॉब्स' (2022)**, तक अमेरिकी समाज को आकार दिया। अमेरिकी मॉडल एक **'संवैधानिक अंपायर'** का प्रतिनिधित्व करता है, जो अधिकारों की सीमाओं को परिभाषित करता है।

इसके विपरीत, हमने भारत में न्यायिक सक्रियता के एक बिल्कुल भिन्न मार्ग का विश्लेषण किया। 1975 के आपातकाल के अनुभव से प्रेरित होकर, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने **'केशवानंद भारती' (1973)** में "मूल ढांचे" के सिद्धांत और बाद में **जनहित याचिका (PIL)** के क्रांतिकारी उपकरण के माध्यम से खुद को फिर से परिभाषित किया। यह मॉडल सामाजिक-आर्थिक न्याय प्रदान करने के व्यापक उद्देश्य से प्रेरित था और इसने न्यायपालिका को शासन के उन क्षेत्रों में भी हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित किया जो पारंपरिक रूप से कार्यपालिका और विधायिका के लिए आरक्षित थे। भारतीय मॉडल एक **'सामाजिक-राजनीतिक उत्प्रेरक' (socio-political catalyst)** का प्रतिनिधित्व करता है, जो शासन की कमियों को दूर करने का प्रयास करता है।

अध्याय 5 में हमारे तुलनात्मक विश्लेषण ने स्पष्ट रूप से स्थापित किया कि ये दोनों मॉडल केवल डिग्री में नहीं, बल्कि प्रकृति, प्रेरणा, उपकरण और दायरे में मौलिक रूप से भिन्न हैं।

6.2 प्रमुख निष्कर्ष : इस व्यापक अध्ययन से कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं:

1. **राष्ट्रीय संदर्भ ही सर्वोपरि है:** हमारा सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि न्यायिक सक्रियता कोई सार्वभौमिक या एक समान अवधारणा नहीं है। इसका स्वरूप और दिशा राष्ट्र के अद्वितीय ऐतिहासिक अनुभवों, संवैधानिक संरचना और सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा गहराई से निर्धारित होती है। अमेरिकी सक्रियता का जन्म शक्ति संतुलन की आवश्यकता से हुआ, जबकि भारतीय सक्रियता का जन्म शासन की विफलता और न्यायिक प्रायश्चित से।
2. **लोकतंत्र में दो भिन्न न्यायिक भूमिकाएँ:** यह शोध स्थापित करता है कि अमेरिकी और भारतीय मॉडल लोकतंत्र में न्यायपालिका की दो अलग-अलग भूमिकाओं को दर्शाते हैं। अमेरिकी मॉडल **लोकतांत्रिक शक्ति पर एक जाँच (a check on democratic power)** के रूप में कार्य करता है, यह सुनिश्चित करते हुए कि बहुमत अल्पसंख्यकों के अधिकारों का हनन न करे। इसके विपरीत, भारतीय मॉडल अक्सर **लोकतांत्रिक शक्ति के विकल्प (a substitute for democratic power)** के रूप में कार्य करता है, जहाँ अदालतें नीतिगत शून्यता को भरती हैं और उन कर्तव्यों का पालन करती हैं जिन्हें निर्वाचित शाखाएं निभाने में विफल रही हैं।
3. **वैधता का संकट, परन्तु कारण भिन्न:** दोनों ही न्यायपालिकाएँ आज अपनी वैधता (legitimacy) के संकट का सामना कर रही हैं, लेकिन इसके कारण अलग-अलग हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में, यह संकट अत्यधिक **राजनीतिकरण (hyper-politicization)** से उत्पन्न हुआ है, जहाँ सुप्रीम कोर्ट को एक निष्पक्ष मध्यस्थ के बजाय एक और राजनीतिक शाखा के रूप में देखा जाने लगा है, जिससे जनता का विश्वास कम हो रहा है। भारत में, यह संकट **संस्थागत अति-विस्तार (institutional overstretch)** और जवाबदेही की कमी से उत्पन्न हुआ है। जहाँ अदालत शासन के हर पहलू

में हस्तक्षेप करती है, वहीं वह अपनी प्राथमिक जिम्मेदारी, यानी करोड़ों लंबित मामलों का निपटारा, करने में विफल रहती है, जिससे उसकी संस्थागत क्षमता पर गंभीर प्रश्न उठते हैं (Mehta, 2007)।

6.3 निहितार्थ और भविष्य की दिशाएँ

इस अध्ययन के निष्कर्षों का दोनों लोकतंत्रों के भविष्य के लिए गहरा महत्व है।

- **संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए**, बढ़ता वैचारिक विभाजन और न्यायिक नियुक्तियों पर कड़वी राजनीतिक लड़ाई न्यायपालिका की स्वतंत्रता और सार्वजनिक विश्वास को और कमजोर कर सकती है। भविष्य में "कोर्ट-पैकिंग" (न्यायाधीशों की संख्या बदलने) जैसी संस्थागत सुधारों की मांग तेज हो सकती है, जो अमेरिकी लोकतंत्र के लिए एक अस्थिरकारी विकास होगा। भविष्य की चुनौती यह होगी कि न्यायपालिका को पक्षपातपूर्ण राजनीति के दलदल से कैसे बचाया जाए।
- **भारत के लिए**, चुनौती न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम के बीच एक स्थायी संतुलन खोजने की है। जबकि जनहित याचिका ने लाखों लोगों को न्याय प्रदान किया है, शासन में अत्यधिक न्यायिक हस्तक्षेप अन्य लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमजोर करता है और एक निर्भरता की संस्कृति बनाता है। भविष्य की दिशा एक ऐसी न्यायपालिका को बढ़ावा देने की होनी चाहिए जो लोकतंत्र को "प्रतिस्थापित करने के बजाय सक्षम बनाए" ("enables, rather than supplants" democracy)। इसके लिए न्यायपालिका को अपनी संस्थागत सीमाओं को पहचानने और अपनी ऊर्जा को न्यायिक सुधारों तथा लंबित मामलों को कम करने पर केंद्रित करने की आवश्यकता होगी।

इस शोध से भविष्य के अध्ययनों के लिए भी नए रास्ते खुलते हैं। उदाहरण के लिए, न्यायिक नियुक्तियों की प्रक्रियाओं (अमेरिकी राजनीतिक पुष्टि बनाम भारतीय कॉलेजियम प्रणाली) का न्यायिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का एक गहन तुलनात्मक अध्ययन मूल्यवान होगा। इसके अतिरिक्त, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील और जर्मनी जैसे अन्य महत्वपूर्ण लोकतंत्रों को इस तुलनात्मक ढांचे में शामिल करने से न्यायिक शक्ति की वैश्विक समझ और समृद्ध हो सकती है।

6.4 अंतिम विचार : न्यायिक सक्रियता एक दोधारी तलवार है। यह वंचितों के लिए न्याय का एक शक्तिशाली साधन हो सकती है और निरंकुशता के खिलाफ एक कवच भी। लेकिन साथ ही, यह लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को कमजोर कर सकती है और शक्ति के नाजुक संतुलन को बिगाड़ सकती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत की यात्रा यह दर्शाती है कि न्यायपालिका केवल एक कानूनी संस्था नहीं है; यह एक जीवंत राजनीतिक संस्था भी है जो लगातार अपनी शक्ति, अपनी भूमिका और अपनी सीमाओं पर संवाद करती है। इन दोनों महान लोकतंत्रों के लिए अंतिम चुनौती न्यायिक सक्रियता को खत्म करना नहीं है - जो एक संवैधानिक लोकतंत्र में शायद असंभव है - बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि यह संवैधानिक नैतिकता, संस्थागत विनम्रता और उन लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति गहरी प्रतिबद्धता में निहित रहे जिन्हें वे दोनों संजोते हैं। लोकतंत्र की निरंतर विकसित हो रही कहानी में, कलम (न्यायपालिका की) तलवार (कार्यपालिका की) से अधिक शक्तिशाली हो सकती है, लेकिन इसका उपयोग अत्यंत विवेक और जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची :

1. **Ackerman, Bruce.** (2005). The Failure of the Founding Fathers: Jefferson, Marshall, and the Rise of Presidential

Democracy. Harvard University Press.
2. **Ahuja, Ridhi.** (2019). Public Interest Litigation in India: A Socio-Legal Study. Routledge.
3. **Ambedkar, B.R.** (Constituent Assembly Debates). Official Reports, Government of India.
4. **Austin, Granville.** (1966). The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford University Press.
5. **Baxi, Upendra.** (1985). Courage, Craft and Contention: The Indian Supreme Court in the Eighties. N.M. Tripathi.
6. **Bhatia, Gautam.** (2017). The Transformative Constitution: A Radical Biography in Nine Acts. HarperCollins India.
7. **Breyer, Stephen.** (2005). Active Liberty: Interpreting Our Democratic Constitution. Alfred A. Knopf.
8. **Chandrachud, D. Y.** (2023). Law and Justice in a Globalising World. (A compilation of selected speeches and lectures).
9. **Chemerinsky, Erwin.** (2017). Worse Than Nothing: The Dangerous Fallacy of Originalism. Yale University Press.
10. **Dershowitz, Alan M.** (2001). Supreme Injustice: How the High Court Hijacked Election 2000. Oxford University Press.
11. **Dworkin, Ronald.** (1996). Freedom's Law: The Moral Reading of the American Constitution. Harvard University Press.
12. **Greenhouse, Linda.** (2005). Becoming Justice Blackmun: Harry Blackmun's Supreme Court Journey. Times Books.
13. **Hamilton, Alexander.** (1788). The Federalist Papers, No. 78.
14. **Khosla, Madhav.** (2017). India's Founding Moment: The Constitution of a Most Surprising Democracy. Harvard University Press.
15. **Mehta, Pratap Bhanu.** (2007). The Rise of Judicial Sovereignty. Journal of Democracy, 18(2), **pp. 70-83**.
16. **Montesquieu, C.** (1748). The Spirit of the Laws.
17. **Powe Jr., Lucas A.** (2000). The Warren Court and American Politics. Harvard University Press.
18. **Sathe, S.P.** (2002). Judicial Activism in India: Transgressing Borders and Enforcing Limits. Oxford University Press.
19. **Scalia, Antonin.** (1997). A Matter of Interpretation: Federal Courts and the Law. Princeton University Press.
20. **Schlesinger Jr., Arthur M.** (1947, January). The Supreme Court: 1947. Fortune Magazine, **pp. 73-79, 200-212**.
21. **Seervai, H.M.** (1983). Constitutional Law of India: A Critical Commentary. N.M. Tripathi.
22. **Simon, James F.** (2002). What Kind of Nation: Thomas Jefferson, John Marshall, and the Epic Struggle to Create a United States. Simon & Schuster.

•